Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

सांख्य दर्शन का कारणता सिद्धान्त

डॉ0 उधम मौर्य
(भूतपूर्व शोधछात्र)
दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उत्तर प्रदेश,भारत।

सारांश : सांख्य दर्शन अपने कारण–कार्य के समबन्ध में सत् कारण से सत् कार्य को उत्पन्न मानता है। इसके अनुसार कार्य अव्यक्त रूप से अपने कारण में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है। कारण में कार्य सूक्ष्म रूप से उपस्थित होने के कारण दिखायी नहीं देता है। यह कारण–कार्य का सिद्धान्त परिणामवाद में परिणीत हो जाता है जिसका अर्थ है – एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व में वास्तविक परिवर्तन। जो तत्त्व कारण में पहले से विद्यमान है किन्तु प्रकट नहीं हुआ है, उसका कार्य रूप में प्रकट होना परिणाम है।

मुख्य शब्द : अव्यक्त, व्यक्त, तिरोहित, आविर्भाव, असदकारणात्, उपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात्, शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावात्, परिणामवाद, तत्त्वान्तर।

सांख्य दर्शन कारण–कार्य के सम्बन्ध में परिणामवाद को मानता है। इसकी दृष्टि अधिक सूक्ष्म है और यह मानता है कि प्रत्येक कारण के भीतर कार्य पहले से ही विद्यमान रहता है चाहे वह स्थूल रूप से दृष्टिगत् न होता हो। सांख्य दर्शन में सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है। वह इस सिद्धान्त का दृढ़ता से प्रतिपादन करता है कि असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जो वस्तु पहले से किसी रूप में विद्यमान नहीं है वह किसी उपाय से उत्पन्न नहीं की जा सकती है। गीता में भी इसका समर्थन किया गया है। सांख्य दर्शन के कार्य अपने कारण में पहले से ही अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है, कारण व्यापार के पश्चात् उसका व्यक्त रूप व्यक्त हो जाता है। जिस प्रकार कार्य की नवीन उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार कार्य का विनाश भी नहीं होता है। व्यक्त कार्य का पुनः अव्यक्त रूप में तिरोहित हो जाना ही विनाश है। व्यक्त रूप से कारण में स्थित कार्य कैसे व्यक्त होता है? इसका वर्णन योगभाष्य में इस प्रकार किया गया है– कुछ बाधक तत्त्व ऐसे हैं जो कारण में अव्यक्त रूप में स्थित कार्य को व्यक्त रूप में नहीं आने देते। कारण सामग्री जब बाधक तत्त्वों को दूर कर देती है, तब कार्य की उत्पत्ति होती है। जैसे किसी खेत के ऊपर तक पानी भर जाने पर क्षेत्रपति उस पानी को अन्य खेतों में पहुँचाने के लिए एक बाँध खोल देता है।[1] अतः स्पष्ट है कि सांख्य सत्कार्यवाद का समर्थन करता है। सत्कार्यवाद की सिद्धि सांख्य दार्शनिकों ने हेतु द्वारा की है।[2] जो इस प्रकार हैं–

असदकारणात्

सांख्य दर्शन के अनुसार यदि कार्य पहले से अर्थात् अपनी उत्पत्ति से पूर्व कारण में विद्यमान न हो तो कर्त्ता के प्रयत्न करने पर भी कार्य उत्पन्न नहीं सकता। जिस प्रकार हजारो शिल्पी मिलकर नीले रंग को पीला नहीं कर सकते, उसी प्रकार हम असत् को सत् नहीं कर सकते।[3] सत् की अभिव्यक्ति अनुभव सिद्ध है और उसके अनेक दृष्टांत भी प्राप्त होते है। जैसे– तिल से तेल की उत्पत्ति होती है, बालू से नहीं।

उपादानग्रहणात्

किसी वस्तु के लिए केवल विशिष्ट साधनों का उपयोग किया जाता है। जैसे– दही की आवश्यकता हो तो हम दूध ही उपादान कारण के रूप में ग्रहण करते हैं, पानी नहीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्य–कारण का सम्बन्ध नियत है एवं कार्य उत्पत्ति से पूर्व भी कारण में रहता है तथा सम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति होती है।[4]

सर्वसम्भवाभावात्

बिना किसी सम्बन्ध के ही कारण से कार्य की उत्पत्ति को स्वीकार कर लेने पर सभी प्रकार के कार्य सभी कारणों से सम्पन्न होने चाहिए। मिट्टी से कपड़ा, जल से घड़ा और ईख से नमक पैदा होने लगेगें[5] किन्तु कदापि ऐसा नहीं होता है। मिट्टी से घट निर्मित होता है पट नहीं। अतः स्पष्ट है कि सब कारणों से सब कार्यों की उत्पत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती।

शक्तस्य शक्यकरणात्

प्रत्येक कारण से प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। केवल शक्य कारण से ही अभीष्ट कार्य की प्राप्ति हो सकती है। शक्ति कार्य विशेष को उत्पन्न करती है। इसका अर्थ होता है कि वह शक्ति कारण से सम्बन्द्ध है। यह निश्चित है कि कारण से सम्बद्ध होकर कार्य की उत्पत्ति होती है। अतः कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व भी सत् है ऐसा लेना चाहिए क्योंकि सत् कार्य का सत् कारण के साथ सम्बन्ध हो सकता है।[6]

कारणभावात्

कार्य इसलिए भी सत् अर्थात् अपनी उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान मानना चाहिए कि कारणात्मक होता है।[7] कार्य कारण से भिन्न नहीं होता। अतः यदि कारण सत् है तो कार्य भी उससे अभिन्न अर्थात् सत् ही होना चाहिए अथवा जो कारण का स्वभाव होता है, वही कार्य का भी स्वभाव होता है।[8] जैसे तिल में चिकनापन है वही तेल में पाया जाता है। इस प्रकार कार्य–कारण से भिन्न नहीं है।

इन सब प्रमाणों के आधार पर सांख्य दर्शन के अनुसार कार्य व्यापार के पहले भी कारण में कार्य की सत्ता रहती है। इसी कारण सांख्यमतानुसार न किसी वस्तु उत्पत्ति होती है और न विनाश। कर्त्ता के व्यापार से वस्तु का आविर्भावमात्र होता है। अव्यक्त वस्तु व्यक्त रूप धारण करती है। व्यापार के विराम होने पर वस्तु अव्यक्तावस्था प्राप्त होकर स्थूल से सूक्षम में परिणत हो जाती है। सत्यकार्यवाद की नींव पर ही सांख्य की पूरी तत्त्वमीमांसा आधारित है। इस सत्यकार्यवाद के अनुसार समस्त विश्व–प्रपंच कार्य अपने कारण मूल प्रकृति में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। इसी अव्यक्त का ही व्यक्त परिणाम विश्व–प्रपंच है जिसे हम सृष्टि कहते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि अनभिव्यक्त हो जाने पर भी यह जगत् कैसे रहता है? इसका उत्तर है– संसर्गाच्चास्य सौक्ष्म्यम्– अपने कारणभूत द्रव्य या धर्मी में संस्पृष्ट या लीन हो जाने के कारण यह स्थूल नहीं रह जाता सूक्ष्म हो जाता है। सौक्ष्याच्चानुपलब्धिरिति– और स्थूल न रहने के कारण इसकी अभिव्यक्ति नहीं होती इसलिए यह दिखायी नहीं पड़ता।[9]

सांख्य का सत्यकार्यवाद परिणामवाद में परिणित हो जाता है, जिसका अर्थ है एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व में वास्तविक परिवर्तन। परिणाम का अर्थ यहाँ उत्पत्ति नहीं अपितु आविर्भाव या प्राकट्य है।[10] जो तत्त्व कारणभूत तत्त्व में पहले से अव्यक्त रूप में विद्यमान है किन्तु प्रकट नहीं है, उसका कार्य रूप में प्रकट होना ही परिणाम है। इस प्रकार परिणाम क्रिया द्वारा अमूर्त से मूर्त का, अस्पष्ट से स्पष्ट का, अव्यक्त से व्यक्त का या सूक्ष्म से स्थूल का आविर्भाव होता है। पूर्व धर्म की निवृत्ति होने तथा नये धर्म के आगम होने पर भी द्रव्य का अवस्थित रहना परिणाम है। परिणाम की इस परिभाषा से स्पष्ट हैं कि जगत् के भावों को प्रतिक्षण परिणामी मानते हुए भी सांख्य दर्शन में उन भावों का प्रतिक्षण विनाश नहीं माना गया है। परिणामवाद के विषय में सर्वदर्शन संग्रह में कहा गया है कि जब सत्ता युक्त द्रव्य एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो इस क्रिया को परिणाम या विकास कहते हैं।[11] सांख्य का मत है कि प्रकृति आदि तत्त्व अपने–अपने कार्य के रूप में परिणत होते हैं, इसमें कारण की अवस्था तथा कार्यावस्था दोनों दशाओं में द्रव्य सत्ता युक्त ही रहता है।

परिणाम को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अविशेष का विशेष परिणाम तथा
2. विशेष का विशेष परिणाम

इसमें से प्रथम को तत्त्वान्तर परिणाम कहते है। इसमें कार्य नये रूप में उपस्थित होता है। जब बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है या अहंकार से इन्द्रियाँ या तन्मात्र से पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं तब यह तत्त्वान्तर परिणाम कहलाता है। जिसका तात्पर्य है कि सृष्टि के पदार्थों का विकास, केवल तत्त्वों के गुणों में परिवर्तनमात्र नहीं। दूसरे प्रकार के परिणाम में विशेष के विशेष में परिवर्तित होने पर किसी पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होती। सांख्य के चौबीस तत्त्वों के तत्त्वान्तर परिणाम से पंचमहाभूतों में होने वाला गो, घटादि का परिणाम भिन्न है। कारण यह है कि पंचमहाभूत तत्त्वान्तर के उपादान कारण नहीं हैं।[12] तथा इसके विपरित प्रकृति, महदादि तत्त्वान्तरों के उपादान कारण है।

सतत् परिणाम की इस परम्परा में प्रत्येक वस्तु अनागत से वर्तमान तथा वर्तमान से अतीत में परिवर्तित होती रहती है। प्रत्येक परिणाम अव्यक्त का व्यक्त होना और पुनः अव्यक्त अवस्था में वापस जाना है। सांख्य कारण–कार्य सिद्धान्त एक ऐसे मूल उपादान पर ले जाता है जिसका विकार यह समस्त जगत् है। संसार की समस्त वस्तुएं शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सहित कार्य द्रव्य अनेक उपादानों के संयोग से उत्पन्न होते है। यह जगत् कार्य–कारण का सतत् प्रवाह है अतः इस श्रंखला का मूल उपादान होना आवश्यक है। वस्तुतः यह कारण आत्मा या पुरुष को नहीं माना जा सकता क्योंकि न तो वह किसी वस्तु का कार्य है न कारण। चार्वाक, जैन और न्याय–वैशेषिक के अनुसार पृथिवी, जल, तेज और वायु के परमाणु ही समस्त सांसारिक विषयों के कारण स्वरूप है किन्तु सांख्य इस विचारधारा से सहमत नहीं है। उनका मानना है कि मन, बुद्धि, अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्त्वों की उत्पत्ति भौतिक परमाणुओं से नहीं हो सकती। अतएव हमें ऐसा मूल कारण खोजना चाहिए जिससे केवल स्थूल पदार्थों (यथा मिट्टी, जल, वृक्ष आदि) की ही उत्पत्ति सम्भव न हो अपितु सूक्ष्म तत्त्व (मन, बुद्धि, अहंकार आदि) की उत्पत्ति हो सके। ऐसा देखा जाता है कि कारण कार्य की अपेक्षा सूक्ष्म और व्याप्त रहता है। इसलिए जगत् का मूल कारण ऐसा होना चाहिए जो जड़ होने के साथ ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो तथा अनादि, अनन्त और व्यापक रूप से जगत् के पदार्थों का कारण हो जिससे समस्त विषय उत्पन्न हो सके। इसी मूल कारण को सांख्य प्रकृति कहता है[13] जो सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुणों की साम्यावस्था है।[14] प्रकृति के इन गुणों में विक्षोभ होने पर ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लयादि अवस्थाएं सम्भव होती है। इस प्रकार सांख्य दर्शन कार्य–कारण सिद्धान्त के आधार पर ही अपनी सृष्टि–प्रक्रिया की व्याख्या करता है।

संदर्भ :

1. योग भाष्य– 4/3
2. असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाऽभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणवाच्च सत्कार्यम्।। सांख्यकारिका, 09
3. तत्त्वकौमुदी– 09
4. उपादानानि कारणानि, तेषां ग्रहणंकार्येण सम्बन्धः। तत्त्वकौमुदी– 09 सांख्यसूत्र– 1/115
5. (1) तत्त्वकौमुदी– 09 (2) उपादान नियमात्– सांख्यसूत्र– 1/115
6. तत्त्वकौमुदी– 09
7. कारणभावाच्च कार्यस्य कारणत्मकत्वात्। तत्त्वकौमुदी– 09
8. कारणाभावात् कारणस्य सत्त्वादियय अथवा कारणस्वभावात्। यत्स्वभावं कारणं तत्स्वभावं कार्यम्।। जयमंगला– 09
9. तथा च नात्सन्तनित्यो येन चितिशक्तिवत् कूटस्थनित्या स्यात किन्तु कथचिंनित्यः तथा च परिणामिति सिद्धम्। तत्त्ववैशारदी पृ0 300
10. भारतीय दर्शन, देवराज– पृ0 379
11. सर्वदर्शनसंग्रह– पृ0 527
12. तत्त्वकौमुदी– 03
13. भारतीय दर्शन, दत्ता एवं चटर्जी– पृ0 165–66
14. (1) सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। सांख्यसूत्र– 1/61 (2) तत्त्वकौमुदी– 03 (3) गरुण पुराण– 266/16